झोंका

ओमा शर्मा

झोंका

https://www.hindiadda.com/jhonka/

परेशभाई ने एक-दो-तीन की गिनती को आगे खिसकाना शुरू किया नहीं कि कमरे में फैली खुसर-पुसर थम जाती है। बीस के आँकड़े तक जाकर यह गिनती फिर एक से प्रारंभ हो जाती है। पहले कुछ वार्मिंग-अप की कसरतें, लेकिन थोड़ी ही देर में गाड़ी दौड़-प्रायः हो जाती है। चार-पाँच की गिनती तक परेशभाई हर ऐंठन-पैंठन को बतौर नमूना साथ करते हैं ताकि हर कोई गाड़ी के साथ ताल बिठा सके। शुरुआती कसरतों के बाद कभी ऐंठनेवाली कसरतें होती हैं तो कभी खींचने वाली या दौड़नेवाली। उसके बाद बैठकर। अंत में बारी आती है लेटकर करने वाली कसरतों की, ज्यादातर सीधे-सीधे ही, एकाध पेट के बल। यह पूरा क्रम करीब चालीस-पैंतालीस मिनट चलता है। पूर्ण विराम लगता है शवासन से, जिसका सभी लोग प्रार्थनामिश्र होकर इंतजार करते हैं। कम से कम पिछले दो सप्ताह, यानी जब से मैंने इस व्यायाम क्रम में हिस्सा लेना शुरू किया है, तब से तो यही स्थिति है।

इन कसरतों में ऐसा कुछ भी नहीं, जिन्हें मैं या आप अपने घर या घर के लॉन में न कर सकें। लेकिन वह एक किताबी और अल्पकालिक उपक्रम होगा। परेशभाई की गिनतियों की गूँज, पूरे समूह का उन गिनतियों पर समर्पण तथा दीवारों के स्पीकरों से उमड़ता-धधकता संगीत, कुछ ऐसी चीजें हैं जो घर पर मुहैया नहीं हैं और यही है वह चीज जो हर रोज इतने लोगों को सुबह-सुबह यहाँ हाजिर करा देती है।

यही है या कुछ और भी है अरे नहीं भाई, और क्या होगा। कुछ भी नहीं है। तो क्या वह खूबसूरत चेहरा भी नहीं वे हृष्ट-पुष्ट अलबत्ता थोड़े से स्थूल गुदगुदे बदन भी नहीं अब आप जबरन कोई शरारत मुझ पर थोपना चाहें तो मैं क्या कर सकता हूँ। आप स्वतंत्र हैं। मैं तो चुपचाप पौने सात बजे उठकर, नित्यकर्म से निवृत्त होकर, दूध की थैलियों को फ्रिज में ठूँसकर, कचरे की बाल्टी को दरवाजे के बाहर रखकर, पत्नी और बेटे-बेटी को सोता छोड़कर साढ़े सात तक इस स्वास्थ्य केंद्र में आ धमकता हूँ। उस समय घर पर तो सभी सो ही रहे होते हैं और इस स्वास्थ्य केंद्र में ठहरे सभी निरे अपरिचित। यूँ समझिए कि मैं आता हूँ और चला जाता हूँ। बिस्तर त्यागने और वापस घर पहुँचने का अंतराल दो घंटे का हो जाता है और यही वह वक्त है जब मैं निःशब्द रहता हूँ। वरना न तो मुझे ऑफिस की हायतौबा बख्शती है और न पत्नी-बच्चों की संलग्नता। मित्रों, पड़ोसियों और टेलीविजन की काँय-काँय को तो मैं कहीं गिन ही नहीं रहा हूँ।

मगर आपको एक बात की दाद देनी पड़ेगी। आपको दुनिया की खैर-खबर पूरी है। इस तीसरे सप्ताह बाद मुझे यह महसूस होने लगा है कि प्रशिक्षक की गिनतियाँ, समूह के अनुशासन तथा भड़कते संगीत (वह भी ताजातरीन और शुद्ध फिल्मी) के अलावा 'उसकी' मौजूदगी का भी कुछ वजूद होता है। इत्तफाकन मैंने दो-तीन रोज उसके पीछे

खड़े होकर वर्जिशें क्या कर लीं, बाहर के साथ-साथ अंदर भी एक ऐंठन संचरित होने लगी। वह अक्सर ऊपर तो कोई झबली-सी टी-शर्ट पहनती है, लेकिन टाँगों पर प्रतिदिन सलैक्स ही चिपकाकर लाती है। बदन जितना गठीला है, उतना ही गुदगुदा। भाई कम से कम मुझे तो तीन फुट के फासले से यही लगा। वक्षों के उभार भी ठीक-ठाक कहे जाएँगे। महिला खिलाड़ियों (या बकौल मेरे एक मित्र के मैनचेस्टरों) जैसा तो कुछ भी नहीं। और हाँ, आपको भी यह इसीलिए बता रहा हूँ क्योंकि कोई लाग-लपेट करने की आदत अपन को नहीं है। अपने अंदर कोई ऊल-जलूल चीज नहीं पालता हूँ। वैसे भी पाँच-सात वर्ष के शादीशुदा व्यक्ति से, जो दो बच्चों का पिता भी है, किसी आपराधिक मानसिकता की उम्मीद नहीं की जा सकती है। मेरा मतलब है जब तक उसमें विशेष वृत्ति की झलकियाँ न हों।

मैं यह भी दर्ज कर दूँ कि मैंने उसकी ऐंठनों और वक्रों को पीछे से देखा जरूर, कुछ हद तक तृप्त भाव से पिया भी लेकिन अंततः सब कुछ ऊपरी-ऊपरी घर्षण से अधिक नहीं कहा जा सकता है। एक-दो बार जब मैं और वो उस वर्गाकार हॉल के विपरीत छोरों पर खड़े थे, तब गर्दन घुमाते वक्त क्षणांश के लिए हमारी नजरों ने एक-दूसरे को क्रॉस किया था, लेकिन प्रशिक्षक की यंत्रवत गिनतियों तथा कसरत की पिघल रही थकान के समक्ष वह उतना ही हस्बेमामूल और निष्क्रिय-सा उपक्रम था, जैसे प्लेटफार्म से गुजर रही गाड़ी के यात्रियों का किसी चाय-गर्मवाले को देखना। हाँ, जब वह कभी-कभार नहीं आती थी या सामूहिक कसरतों के बजाय सामनेवाले कमरे में (दोनों कमरों में उभयनिष्ठ पारदर्शी काँच था), मल्टी-जिम पर अपनी भेंट चढ़ाती, तब जरूर कुछ अखरता। मुझे गुस्सा कम, रहम अधिक आता कि यदि मोहतरमा को अपने वजन और अतिरिक्त चर्बी के प्रति सतर्कता है तो व्यायामों को नियमित क्यों नहीं रखती है। कोई इसको समझाए कि इसकी सारी मेहनत गुड़-गोबर हो रही है, बेवकूफ। खैर मुझे क्या। किसी खेल-भावना के तहत ही ऐसा भाव मन में कौंध आया था।

उस दिन सोमवार था यानी साप्ताहिक रविवारीय अवकाश के बाद का पहला दिन। अमूमन मैं नियत समय से पहले ही आ जाता हूँ। व्यायामों के पहले के समय को या तो कमर-पट्टी के सहारे रगड़ता या एकाध डंबल-संबल सँभालकर। मुझे मिस्टर भारत की तरह स्टड आकार नहीं बनाना है। मैं ठहरा एक पढ़ा-लिखा आदमी। अपने हाजमे और तंदुरुस्ती के रख-रखाव की खातिर मैं यहाँ आता हूँ। जो लोग जी तोड़कर बाजुओं की मछलियों और छाती की धमनियों को उजागर करने की नीयत रखते हैं, मुझे आला दर्जे के ठुस्स और गँवार लगते हैं। निकम्मे कहीं के। अक्ल नहीं, शक्ल नहीं, बस शरीर के पीछे हाथ धोकर पड़ गए। इनके पास इतना समय आता कहाँ से है

हाँ, तो मैं कह यह रहा था कि उस दिन मैं थोड़ा देरी से पहुँचा था। प्रवेश पर रखे रजिस्टर पर फटाफट अपने हस्ताक्षर घसीटे, समय लिखा और अर्दली के अभिवादन को स्वीकारता दरवाजे में प्रवेश ही कर रहा था कि... कि वह सामने। पसीने से सराबोर। मुझे एक-दो-तीन के बिगुल में घुसटने की जल्दी थी, लेकिन यकबयक सामना होते ही उसने ऐसी मुस्कान बिखेरी कि मैं कुर्बान, नहीं नहीं, गदबद हो उठा। मेरा अपना चेहरा भी कैसे मुस्कराहट में डूब गया, पता नहीं। धड़कन जैसे धम्म से ठहर गई। ठहर गई या कुलाँचें मारकर भभड़-भभड़ करने में जुट गई, कह नहीं सकता। ऊपरी तौर पर एक बेहद ही सामान्य प्रक्रिया से गुजरने के बाद मैं उस वर्गाकार कक्ष की नियत कतार में थोड़ा झाँक-झूँककर सम्मिलित हो गया।

चालू व्यायाम की गिनती को बीस तक पहुँचाकर परेशभाई ने जब पैंतरा बदलकर फिर से एक-दो-तीन की गुहार की तो मुझे लगा वह अब बिल्कुल सही आँकड़ा गिन रहा है। उस तरह से यंत्रवत तो कतई नहीं जैसा पिछले एक महीने से ऊपर हो आए समय से बोलता आया है। क्या इसी को कहते हैं बर्फ का पिघलना।

ये परशेभाई भी अजब हैं। बीस के बाद फिर से एक-दो-तीन क्यों करता है। गिने आगे तक। चलने दे सिलसिला।

झूठ नहीं बोलूँगा, उस पारदर्शी विभाजन में भी पता नहीं किस वैज्ञानिक आविष्कार की खातिर वह मुस्कराहट बिंब लेने लगी थी। कहीं बहुत पहले पढ़ा था कि किसी व्यक्ति की लिखावट और मुस्कराहट उसके व्यक्तित्व के बारे में बहुत कुछ उड़ेल देती हैं। लिखावट में फिर भी दो राय हो सकती हैं, मुस्कराहट के लिए तो यह सौ फीसदी सच होगा। बिना मुँह खोले ही एक गहरी पिंक लकीर एक गाल से दूसरे गाल तक खिंच गई। त्वचा की उस सिकुड़न में आँखें भी कुछ मिच सी गईं। चेंज, एक, दो, तीन... ये तेरी पलकें झुकी-झुकी, ये तेरा चेहरा खिला-खिला... ठीक-ठीक है मुझे लगता है जैसे हँसने का आवाज से रिश्ता है, उसी तर्ज पर मुस्कराने का आँखों से संबंध है। किसी आमंत्रित मुस्कान को तो आँखों के बिना मुकम्मल माना ही नहीं जा सकता है... थोड़ा मिच जाने के बावजूद छलकने का आभास जहाँ होता हो। बहुत पुरातन और ढर्रेदार चाहे लगे लेकिन मैं फिर भी कहूँगा कि जैसे वहीं-कहीं गुलाब का फूल खिल आया था।

और कमाल ये कि पहल उसी ने की थी। मैं तो दरवाजे में प्रवेश बहुत ही निरपेक्ष होकर कर रहा था। उसी ने ऐसा पासा फेंका तो मैं क्या करूँ। सोलह, सत्रह, अठारह... कितना सही बोल रहा है परेशभाई। इससे ज्यादा तो वह नहीं होगी, और बीस से ऊपर तो हर्गिज नहीं। चलो शवासन।

गुलाब का फूल हर साँस के साथ मेरे अंदर उतरने लगा है। साँस दर साँस। अहम्।

आगे क्या किया जाए। आज बहुत बड़ी शुरुआत हो गई है। आगे पता नहीं क्या हो। एक कमी मुझे हमेशा सालती आई है - किसी प्रेमिका के प्रेम की। जिस व्यक्ति से मेरा विवाह हुआ, उसने मुझे भरपूर स्नेह दिया। प्यार और रोमांस के सैकड़ों चरमोत्कर्ष पल दिए-लिए, लेकिन उसमें कहीं-न-कहीं पति-पत्नी होने का अधिकार भाव तो घुला ही था - दूध में जामन की माफिक, जो थोड़े समय बाद ही अपनी खटास छोड़ने लगता है। वह निर्बाध, निर्बोध और आकारहीन भाव, उसमें कहाँ होता है जिसकी उज्ज्वलता खुशबुओं की तरह शाश्वत और बहाव की तरह अनवरत होती है।

खैर, यह मेरी निहायत ही व्यक्तिगत सोच है, जिससे दुनिया की आधी से भी अधिक आबादी, हो सकता है, इत्तफाक न करे। मर्दों को वैसे भी अपनी सुविधा के लिए हर मौलिक तर्क गढ़ना आता है। अरे, इसमें औरत या मर्द की क्या बात है। किसी मादा के लिए भी यह उतना ही सच है, जितना किसी पुरुष के लिए।

लेकिन क्या सच है, क्या नहीं है, इसे जाँचने का कोई मौका भी तो हो। न सूत न कपास और...

अगले दिन हमारा आमना-सामना तो नहीं हुआ, लेकिन व्यायाम करते-करते ही एक क्षण ऐसा आया, जब हमने अपनी मुस्कानों का हौले से विनिमय कर लिया था। फिर से वही गुलाब का फूल। मेरी जुबान तो बेआवाज ही हलो कहकर पलट गई। क्या भरपूर मुस्कान है। बात आगे बढ़ी तो कभी समझाऊँगा कि सरेआम थोड़ा हल्के से खिला करो। तुम नहीं जानतीं, ये दुनियावाले कितने कमीने और लीचड़ होते हैं। एक स्वस्थ, सकारात्मक मुस्कान के भीतर भी हजारों तरह की दुर्गंध सूँघ लेते हैं। अभी उम्र में कच्ची है ना, इसीलिए ऐसा करती है। समझ आने पर खुद-ब-खुद...

उसके बाद पूरे दस दिन बीत गए। इक्की-दुक्की मुस्कानों के आदान-प्रदानों के अलावा कुछ भी नहीं हुआ। एक-दो रोज तो उसमें भी नागा। मैं भी कौन-सा उधारा बैठा था। नजरें मिल जाती हैं तो 'कुछ' हो जाता है, नहीं तो किसे फुर्सत है। बोनस है, कोई पगार थोड़े ही है।

उस दिन शनिवार था। पूरे पैंतालीस मिनट की परेशभाई की एक-दो-तीन रगड़ाई से चूर होकर हम दोनों ने साथ-साथ ही बाहर आकर जूते पहने। क्या सुखद संयोग। अभी तक कभी वो बीच में ही 'टें' बोलकर खिसक जाती थी या मल्टी-जिम पर आजमाइश करती थी।

हो न हो, आज किसी उद्देश्य के तहत रुकी हो।

मेरी 'हलो' के बटन के साथ गुलाब का फूल फिर खिल उठा।

'हाऊ आर यू'

आजादी की इस पचासवीं सालगिरह में अपरिचित स्थानों और व्यक्तियों के बीच अंग्रेजी से सेंध मारना कितना सहज-स्वाभाविक लगता है। हिंदी तो जैसे कोई अतिरिक्त योग्यता है।

'आयम फाइन।'

हम लोगों ने केंद्र से बाहर की तरफ रुख कर लिया था। उसने अपने जूड़े की ढील को चलते-चलते ही कसा। अरे, बाप रे, क्या गोरी चिट्टी गर्दन है। हल्के-हल्के सुनहली बालों की वजह से बिल्कुल मखमली प्रतीत हो रही थी।

'व्हाट्स योर नोम।'

'आयम लावन्या'

ये 'आयम' पिछली बार भी बोला था। मैं 'आई सी' की मुद्रा में गर्दन हिलाता हूँ।

'एंड यू।'

'आयम प्रांजल गर्ग।'

गुलाब का फूल हल्के से फिर खिलता है। मुझे तुरंत ही खयाल आया कि पूरा नाम बताने की क्या जरूरत थी। वह कोई यूपीएससी थी। कहीं संकीर्ण संस्कारों की पली-बढ़ी हुई तो कहीं 'इसी' बिंदु पर न बिदक जाए।

'व्हाट डू यू डू।'

अभी तक मैं पहले प्रश्न कर रहा था। इस बार उसने किया। कितनी अच्छी बात है।

'आयम इन गौरमेंट सर्विस' मैंने मात्र सूचना भाव से कहा। दरअसल यह मेरी चाल थी। आज तक जिससे भी मैंने, परिचय में, सरकारी नौकरी की बात कही, सभी ने विभाग ही नहीं, सर्विस और पद की बारीकियों तक बाकायदा टोह ली। आईपीएस

सुनने के बाद तो व्यवहार में गमक नौ गुनी हो उठती थी। मैं मंद-मंद सोचता कि इससे मेरी शालीनता ही संप्रेषित होती थी।

पहली बार ऐसा हुआ कि किसी ने एक सूत भी आगे कदम नहीं बढ़ाया।

कोई बात नहीं। आगे कभी मुलाकातों में तो उसे पता लगेगा ही। तब तो प्रभाव और अधिक तल्ख हो जाएगा। मुझे ठंडा खाने की आदत है, सिलसिला जारी रखते हुए मैंने पूछा :

'व्हाट अबाउट यू'

'आई आलसो वर्क... फॉर मैक्स पेज' मेरी तर्ज पर उसने भी शालीन बनने की कोशिश की थी, लेकिन पल भर में ही छिटक गई। उम्र और अनुभव कहीं तो असरदार होते हैं।

तब तक हम लोग केंद्र की इमारत के बाहर आ चुके थे। सामने ही पार्किंग थी। वह 'ओके' कहकर अपनी गाड़ी की तरफ मुड़ी तो मेरे मुँह से एकदम तहेदिल से 'सी यू' निकल गया। मैं अपनी सड़क की तरफ भी नहीं मुड़ा था कि उसकी मारुति मेरे बराबर से हूम करके चली गई। शीशे चढ़े ही हुए थे और जाते-जाते अलविदा का हाथ कहीं भी नहीं उठा हुआ था।

चलो गाड़ी का नंबर तो पता लगा : बारह अठहत्तर।

किसी भी बड़े 'मुकाम' की इससे बेहतर शुरुआत और क्या हो सकती है। कितने आराम-आराम से बातचीत होती रही। संक्षिप्त ही सही, पर कम नहीं कही जा सकती है। भई, पहली बार में ही सब कुछ थोड़े ही हो जाता है। लेकिन मानना पड़ेगा, लड़की में आत्मविश्वास की कमी नहीं है। कितने सामान्य भाव से बोल रही थी। कोई जल्दबाजी नहीं, कोई लड़खड़ाहट नहीं। नाम भी कितना अद्‌भुत और अनसुना। लावन्या। सही नाम लावण्या है और हर चीज नाम के कितने अनुरूप। लेकिन लावन्या क्या गुप्ता, सिंह या मिश्रा। जो भी हो, क्या फर्क पड़ता है। मैं भी कभी-कभी कितना सिकुड़कर सोचने लगता हूँ।

आगे अंतरंगता आएगी तो क्या कुछ छुपेगा?

गड़बड़ बस यही रही कि उससे यह भेंट शनिवार को हुई। कल की छुट्टी खामख्वाह बीच में आ गई। मन तो यही कर रहा है कि जल्दी से सोमवार की सुबह हो जाए।

आगे क्या बात की जाए स्कूल कॉलेज की पढ़ाई, अभिरुचियाँ, फिल्में, टी.वी. तथा समाज के साथ-साथ साहित्य और कला जैसे विषयों पर मैं कुछ न कुछ बात तो कर ही सकता हूँ। मौका मिला, चाहे थोड़ा विलंब से ही सही, तो अपनी कोई कविता भी सुना सकता हूँ। कविता की वैसे उसे समझ होगी नहीं। पचास फीसदी से ज्यादा कवियों को नहीं है, लेकिन सब कुछ मौका देखकर ही किया जाएगा। कहीं कविता सुनकर मेरे बारे में ऊल-जलूल अवधारणा बना बैठी तो सब मिट्टी पलीद हो जाएगी।

वैसे जो मैं सोच रहा हूँ, उसकी नौबत आनेवाली नहीं है। उम्र में मुझसे दस वर्ष तो छोटी है ही। बाप की गाड़ी में चाहे सेहत सुधारने जरूर अकेले आ जाती है, दीन-दुनिया की कोई खास खबर इसे कहाँ होगी। इस उम्र में होती भी कहाँ है। लड़कियों का मन तो और अधिक चंचल होता है। वह किसी बोरियत के मोड़ पर टिकने कहाँ देगी।

रविवार का दिन जैसे-तैसे कटा। वह लगातार अपने अक्स से मेरे दिलोदिमाग पर दस्तक देती रही। मैं अखबार की रविवारीय पत्रिका को गौर से पढ़ा करता हूँ, लेकिन उस रोज जैसे सब तितर-बितर रहा था। कभी वह नैक ट्विस्ट करती अवस्था में हाजिर होती तो कभी जूड़े की पिन को दाँतों में दबाकर गर्दन नीची करके बालों का जल्दी-जल्दी घेरा लगाते हुए। कभी-कभी तो यह भी लगता है कि किसी आलीशान रेस्तराँ में अधपिये गिलास के बराबर में पंजे पर अपनी ठोड़ी साधे वह मुझे निहारे जा रही है।

लेकिन एक बात माननी पड़ेगी। मेरे जैसा हवाई पुलाव बनानेवाला भी चिराग ढूँढ़े न मिले। सर्विस के पाँच साल, शादी के सात साल और दो बच्चों का पिता बनने के बाद एक लड़की की गिरफ्त में ऐसे चला जा रहा हूँ जैसे सदियों से कुँवारा बैठा था। आखिर वह मुझे 'ऐसा' क्या दे सकती है, जो 'पहले' से ही मेरे पास नहीं है

कभी सोचता हूँ कि क्या वाकई मुझे उसकी तरफ बढ़ना चाहिए। अपना एक भरापूरा हँसता-खेलता परिवार है। दो-चार दिन लुक-छिप के उससे मिल भी लिया तो क्या हासिल हो जाएगा। इस शहर में हर आठवाँ-दसवाँ आदमी तो मुझे जानता ही होगा। पल्लवी तक बात पहुँचते देर नहीं लगेगी। मेरे हाव-भाव या चाल ढाल से मुमकिन है, वह एक रोज मेरी चोरी पकड़ ले। तब जो कुरुक्षेत्र मचेगा, उसे कैसे सँभालूँगा। फैमिना या सैवी में कई औरतों-मर्दों के आढ़े-तिरछे संबंधों के बारे में समस्याएँ होती हैं, लेकिन दूर से रस लेकर उन्हें पढ़ना एक बात है, उनका भुक्तभोगी होना निहायत दूसरी। एक स्टेज के बाद कहीं ऐसा न हो कि कोई विकल्प ही न रहे।

लेकिन यूँ अनायास ही किसी से प्यार किए जाना पूरे जीवन में कौन-सा रोज-रोज या सबके साथ होता है। स्थितियाँ यदि ऐसी बनती जा रही हैं तो मुझे उनसे भागना नहीं चाहिए, अनुभव करना चाहिए। आगे जो होगा, उसे भी देखा जाएगा। आखिर प्यार करना इतना अमानवीय कृत्य तो नहीं। महज दोस्ती तो आप किसी से भी रख सकते हैं। पल्लवी भी तो अपने कॉलेज के एक-दो पुराने साथियों से बराबर मिलती रहती है, मेरी अदृश्य इच्छा के खिलाफ। कभी-कभी उन सालों की फोन तक करने की हिमाकत हो जाती है।

जब तक शारीरिक संबंध नहीं है, तब तक तो कम से कम कोई डर जैसी चीज दिल में लानी ही नहीं चाहिए और मान लो किसी आवेग या परिस्थितिवश ऐसा 'कुछ' हो भी गया तो इससे मेरी पल्लवी के प्रति जो निष्ठा या नीयत है, उसे तो एक झटके से निरस्त नहीं किया जा सकता है। पिछले पाँच-सात वर्षों से हर महीने की तनख्वाह और सुबह से शाम तक की दौड़-भाग पल्लवी और परिवार को ही चढ़ावे की तरह अर्पित करता आया हूँ। निष्ठा अपनी जगह फिर भी रहेगी। मुझे लगता है हमारे समाज ने निष्ठा से शारीरिक संबंधों को उद्भूत मानकर बहुत संकीर्ण और सरासर गलत नजरिया अपनाया है।

तो यह तय रहा कि पलायन नहीं करना है। थोड़े साहस और रिस्क के बिना जीवन में प्यार क्या, कुछ भी नहीं किया जा सकता है।

चार-पाँच वर्ष पहले मेरी एक महिला मित्र (शादीशुदा) ने स्त्री मानसिकता को लेकर एक काबिलेगौर गुरुमंत्र दिया था - बाद में चाहे वह आपकी दासी बन जाए, लेकिन स्त्री कभी पहल नहीं करती है। इसी में उसकी गरिमा है। लेकिन यहाँ तो पहल भी उसी ने की है। वो ठीक है, लेकिन मुझे भी तो उसमें अपनी रुचि को जाहिर करना चाहिए। सब कुछ उसी पर छोड़ दिया तो संकोच सब कुछ नेस्तनाबूद न कर दे।

तो अगर कल सुबह फिर मुलाकात हुई तो क्या कहूँ-करूँ उसके नाम और सौंदर्य को लेकर उकसाया जाए कौन स्त्री अपने बारे में अच्छा सुनकर गद्गद् नहीं होती है। पल्लवी तो कोई भी नई साड़ी या सूट पहनने के बाद 'अच्छी लग रही हूँ' की अदम्य अपेक्षा आज भी पालती है। नहीं, शुरुआत में यह कहना अटपटा लगेगा। कुछ और मेलजोल और सहजता आने के बाद ही इतने अधिकार भाव पर सवार हुआ जा सकता है। ईद के चक्कर में रोजे न पीछे पड़ जाएँ।

'कैन वी हैव ए कप ऑफ कॉफी' कैसा रहेगा उसकी मंशा भी इस बारीक सवाल के बाद खुलासा हो जाएगी। 'हाँ' का मतलब होगा हाँ। व्यायाम केंद्र में छोटी-सी कैंटीन है ही।

वो मगर उस लिहाज से बहुत तंग और अनुपयुक्त रहेगी। कोई नया-नया कसरती ही आ धमकता तो मेरी तो हो गई पौ-बारह। बात ढाई रुपए की नहीं, माहौल की है।

क्यों न 'हॉलीडे इन' में जाया जाए। वहाँ, बस यही है कि मैनेजर समेत दो-चार लोग मुझे जानते हैं। अभी दसेक रोज पहले ही तो अपने नए डीजीपी को वहाँ दारू पार्टी दी है। पुलिसिये परिवारों समेत। कोई आ के साहब-साहब करने लगा तो सब खाली-पीली गुड़-गोबर हो जाएगा। रॉक रिजैंसी कैसा रहेगा नहीं, वो भी नहीं। उसकी लोकेशन बहुत केंद्रीय है।

क्यों न इस फैसले का प्राधिकार उसी के सुपुर्द कर दिया जाए जो होगा, देखा जाएगा।

बमुश्किल सोमवार की सुबह हुई। उसकी बारह अठहत्तर कहीं नहीं दिखी। हो सकता है आज बाप की दूसरी गाड़ी उठा लाई हो। मैं एक भयंकर आशंका को सँभालते-सँभालते व्यायाम कक्ष की तरफ बढ़ने लगा। एक बार अपने से ही चोरी-सी करते हुए पीछे घूम गया-कहीं पीछे से तो नहीं आ रही है।

लेकिन वह नहीं आई तो नहीं ही आई।

इस तरह से जरूर हो जाएगी स्लिम-ट्रिम। स्वास्थ्य का अपना एक अनुशासन होता है। घूमते, फिरते, दुनिया को दिखाने के लिए ही अगर हाथ-पैर चटकाने हैं तो न तीन में रहेगी, न तेरह में। मैं उसकी उमर का था तो कैसे इकहरा और दुबला सा था। वो तो नौकरी ऐसी मिल गई कि दफ्तर में बैठने को मिला ए.सी. कमरा और दौड़-धपड़ के लिए सरकार ने थमा दी जीप। थोड़ा-सा डबल चिन तो इस हालत में कंकाल भी हो जाए। फिर भी घर से इस केंद्र तक रोजाना जॉग करके आता हूँ। देख लेना, एक-दो महीने में ही डबल-चिन न गायब कर दूँ। परेशभाई वैरी गुड-एक-दो-तीन... चेंज, विंडमिल्स। कभी आए ना जुदाई, जुदाई-जुदाई।

बुधवार को जरूर बारह अठहत्तर मुस्तैद थी। कोई जरूरी काम लग गया होगा। तभी तो दो दिन नहीं आई। कोई बात नहीं। आज तो आ गई, लेकिन समूह के साथ व्यायाम करने के बजाय आज वह फिर मल्टी-जिम से उलझी रही। मुझे पता नहीं क्यों यह विचार कौंधा कि कहीं उसे वो 'जरूरी तीन दिन' तो नहीं हो रहे थे। अपनी सोच पर जहाँ एक तरफ मुझे विस्मय हुआ, वहीं उसके प्रति मन में सहानुभूति भी तैरने लगी। उसका दो दिन न आना, चेहरे पर हल्की-सी मुर्दनगी और व्यायामों की बजाय आज मल्टी-जिम को तरजीह।

गुरुवार यानी अगले दिन सब कुछ ठीक-ठाक रहा। वर्गाकार हाल में फिर एक बार गुलाब का फूल खिला। कितनी मुद्दत बाद। परेशभाई की नजरों ने संभवतः लक्ष्य भी किया। और भी किसी ने देखा हो तो कह नहीं सकता। ये हरी कमीज पहनकर जो सफेद घुटन्नेबाज आता है, मुझे बेहद शक्की और खड़ूस लगता है। साले को कतई सौंदर्यबोध नहीं है। उसे और कभी-कभी मुझे कैसी गिद्ध-नजरों से देखता है। मन करता है किसी सिपाही से कहकर साले पर दो-चार डंडे पड़वा दूँ। सारी अक्ल ठिकाने आ जाएगी। वो तो मैं ही हूँ जो पूरी एनॉनिमिटी बनाए रखता हूँ, नहीं तो इसका मुकम्मल इलाज है मेरे पास।

वर्जिश पूरी होने के बाद मैं अपने जूते चढ़ा रहा था कि वह भी अपनी चप्पलें पहनने लगी। मैंने फीते बाँधने के बहाने प्रस्थान को उसके साथ एक-स्वर किया। उसकी झबले-सी टीशर्ट पर लिखे शब्दों से मैं ही जानता था कि वह मैक्स-पेज के लिए काम करती है। शरीर वैसे पुलिस विभाग के लिए भी चलेगा। गठित और गुँथा हुआ है। थोड़ी मांसलता (या कहूँ लावण्य) अधिक है। रंग भी ज्यादा दूधिया है, लेकिन किसी चौराहे पर सुबह-शाम तीन-तीन घंटे ड्यूटी बजाएगी तो सब कुछ एक साथ चाक-चौबंद हो जाएगा।

'हाऊ आर यू।' हम लोग निकास की तरफ अग्रसर हैं।

'आयम फाइन।'

'कब से आ रही हैं आप यहाँ?'

'कोई दो महीने हो आए।'

मेरा पूछने का मन है, क्या नतीजा रहा है अभी तक मतलब कुछ वजन कम-कुम हुआ।

'आप काफी अच्छा करती हैं।'

'थैंक्स, लेकिन एक-दो एक्सरसाइज करते वक्त तो लगता है मैं कुलैप्स कर जाऊँगी।'

'कौन-सी वाली पर।'

'जब नीज के ऊपर खड़े होकर अपर बॉडी की रोइंग करनी पड़ती है।'

'हाँ, वो थोड़ा मुश्किल है, रिवर्स रोइंग के वक्त तो खासकर।'

मेरे अंदर कभी कॉफी का प्याला आकार ले रहा है तो कभी उसकी अभिरुचियों के प्रति जिज्ञासा। निकास से ठीक पहले किसी व्यक्ति को वह पूरे मनोयोग से 'हाय' करती है। 'कैसे हो' भी जोड़ती है। वह शख्स आनन-फानन में तिरोहित हो जाता है। मुझे लगा उस व्यक्ति से इसका विशेष परिचय नहीं था।

मेरे साथ चलते-चलते किसी डर या असुरक्षा की भावना के तहत ही उसने ऐसा किया था - मुझे जताने के लिए।

पार्किंग तक जाने में बस चार-छह कदम और लगने हैं। आज भी कोई ब्रेक-थ्रू नहीं। अब भी वक्त है, लेकिन अब ये ही बचकाना हरकतों पर उतर रही हैं तो मुझे क्या।

कुछ हिम्मत सी जुटाकर फिर भी मैं कहता हूँ।

'इट्स रियली नाइस टू सी यू हेयर ऐवरी मॉर्निंग।'

इस पर गुलाब का फूल खिल उठता है। बारह अठहत्तर की तरफ जाने से पहले एक थकी-थकी सी 'ओके' मुझ तक आती है, जिसे मैं 'सी यू' के दस्तानों में लपक लेता हूँ।

आज का कब से इंतजार था, लेकिन सब कुछ ऐसे फिसल गया जैसे मुट्ठी से रेत। इतने गैप के बाद तो मुलाकात हुई थी, वो भी यूँ ही चली गई। कहीं उसे ये तो नहीं लगता कि मैं उसके मुकाबले उम्रदराज हूँ या कम हैसियत का मालिक हूँ। यदि उम्र के फेर के कारण उसका रुख उदासीन है तो पहल करके उसने पानी में कंकड़ मारा ही क्यों वैसे बीस और तीस में क्या अंतर होता है। सोलह-सोलह साल की लड़कियों के चालीस पार पुरुषों के साथ संबंधों से घरेलू पत्रिकाएँ रँगी पड़ी रहती हैं।

हाँ, हैसियत के प्रति लड़कियाँ जरूर ज्यादा सतर्क रहती हैं। लैला-मजनूँ का दौर कब का चला गया है। आजकल तो जो उनके नखरे सहे, खिलाए-पिलाए या घुमाए डुलाए, वही मीरा और इस सबके पीछे आदमी की हैसियत एक अंतर्धारा की तरह प्रवाहमान रहती ही है। उस रोज अपनी ही एक बैचमेट, प्रेरणा गिल से बात हो रही थी। मैंने एक शाश्वत और मतलबपरक सवाल किया था उससे। 'वो क्या खूबी है, जो एक पुरुष की तरफ औरत को खींचती है। व्हाट अट्रेक्ट्स ए वूमैन टू ए मैन' 'उसकी सफलता' प्रेरणा गिल ने बिना किसी अतिरिक्त सोच-विचार के स्पष्ट कहा था, जैसे पहले कभी इस सवाल से पेश आ चुकी हो। यानी पुरुष की सोच-समझ का कोई महत्व नहीं। उसके व्यक्तित्व (जिसमें मेरे हिसाब से कुछ हद तक शक्ल-सूरत समाहित होते हैं) का भी कोई वजूद नहीं। लड़कियों की गणनाओं में टिकती है तो आदमी की सफलता, वह

चाहे उसने खुद हासिल की हो या विरासत में मिली हो। कॉलेज और पुलिस एकेडमी के अनुभवों पर नजर डालता हूँ तो प्रेरणा गिल का फलसफा दिन के उजाले की तरफ साफ और सत्य दिखता है। हर चुसा-मुँह और लमढेंक (लड़का) एक अदद गर्लफ्रेंड के बिना कभी जिया ही नहीं।

तो दिखा दूँ इसे अपनी हैसियत और सफलता। फिर तो दौड़ी चली आएगी। लेकिन सोचता हूँ क्यों इस फालतू पचड़े में पड़ूँ। मैं यहाँ कसरत करने आता हूँ, कौन सा इश्क लड़ाने। दिल के किसी सुरक्षित कोने से तो मैं खुद नहीं चाहता कि इसके साथ कुछ बात बने... क्योंकि जानता हूँ इस सबकी कीमत कितनी विध्वंसक हो सकती है। यहाँ तक कि अभी तक कोई विशेष 'प्रगति' के न होने से मेरे अंदर एक गुमनाम सा विजय भाव भी उखड़ने लगता है।

लेकिन जिस रोज उसे देख लेता हूँ, सभी भारी-भरकम तर्क बगलें झाँकने लगते हैं। उसमें मुझे अक्सर ऐश्वर्य राय जैसा 'चिकना सौंदर्य' नजर आता है (उसकी नाक ऐश्वर्य से मिलती भी है) और अरुंधती राय जैसी गहरी मासूमियत भी।

आज सुबह आई थी। व्यायाम भी किए। मैंने चार-छह दफा, सायास होकर, एक-दो-तीन के दौरान ही नजरें मिलाने की कोशिश की। लेकिन वह वर्जिशों में मशगूल रही। मुझे लगता है वह जान-बूझकर तटस्थ हो रही है। आते वक्त मेरे सामने से ही गुजरकर अपनी कार तक गई थी, लेकिन कहीं भी गुलाब का फूल नहीं दिखा। लड़कियों की इसी जटिलता से मुझे चिढ़ है। जो उनमें रुचि लेगा, उसके प्रति तो हो जाएँगी तटस्थ और बेरुख, और जो उन्हें नजरअंदाज करे, उसके लिए करेंगी सांगोपांग समर्पण।

ठीक है, बनी रहे तटस्थ।

मैं उससे दुगुना तटस्थ हो जाऊँगा, तब सीधी हो जाएगी।

मित्रो, मुझे यह स्वीकारने में कोई संकोच नहीं कि उसी दुगुनी तटस्थता को जीते हुए अब डेढ़ महीना और गुजर गया है। वापस आए मेरे कदम अब परेशभाई की एक-दो-तीन के साथ अधिक तालमेल बिठाने लगे हैं। हरी कमीज और सफेद घुटन्ने ने मध्यांतर में एकाध बार अपनी गोभी के फूल से मेरा स्वागत भी किया है।

केंद्र के बाहर हर रोज बारह अठहत्तर आती है, लेकिन वैसे ही चली भी जाती है।